LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् ।
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

गीता परिवार
॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 18: मोक्षसंन्यासयोग

1/6 (श्लोक 1-6), रविवार, 02 अप्रैल 2023

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/OqgrwTI-M5o

कर्म की व्याख्या

आज के सत्र का शुभारम्भ भगवान श्रीकृष्ण प्रार्थना, दीप प्रज्वलन, हनुमान चालीसा पाठ तथा गुरु वन्दना के साथ हुआ। सत्र में शिक्षकों तथा अभिभावकों के मध्य संस्कार, संस्कृति, देश-प्रेम, कर्त्तव्य व सेवा भावना जगाने के कार्य पर जोर दिया गया। गीता जी के अध्यायों के विवेचन के सत्रह सोपानों को पार करते हुए हम अन्तिम सोपान पर आ पहुँचे हैं। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अध्याय है। सन्त ज्ञानेश्वर महाराज ने इस अध्याय को **एक अध्यायी गीता** कहा है क्योंकि इसमें सम्पूर्ण गीताजी का सार है।

इस अध्याय का महत्त्व एक दृष्टान्त से समझते हैंः-

एक बार किसी व्यक्ति को ट्रेन से कहीं जाना था। स्टेशन से गाड़ी छूटने का समय पाँच बजे का था। उसने सोचा कि अभी समय है कुछ आराम करके चार बजे निकलने पर भी वह आसानी से ट्रेन को पकड़ लेगा। संयोगवश उसे यह बात पता नहीं थी कि उसके कमरे की घड़ी की बैटरी कमजोर है। घड़ी धीरे-धीरे चल रही थी। जब घड़ी के काँटे चार पर पहुँचे तो उसने सोचा कि चार बज गए हैं अभी निकलना चाहिए। वास्तव में साढ़े चार बज गए थे और उसे समय का अनुमान नहीं हो पाया था। उसने बाहर आकर कहा कि वह जा रहा है क्योंकि पाँच बजे की ट्रेन है। सभी ने कहा कि जल्दी निकलना था अब तो साढ़े चार बज गए हैं। उसने मोबाइल में देखा साढ़े चार बज गए थे। वह तेजी से स्टेशन की ओर रवाना हुआ। प्लेटफार्म पर जैसे-तैसे पहुँचा तो देखा कि ट्रेन धीमी गति से चल पड़ी थी। तीव्र गति से सीढ़ियाँ उतरकर भागते हुए वह अन्तिम डब्बे में चढ़ गया और ठण्डी साँसे लेकर बोला कि अच्छा हुआ, अंततः ट्रेन पकड़ में आ ही गई। अर्थात् जिस प्रकार अंतिम डब्बे को पकड़ने से ट्रेन मिल जाती है उसी प्रकार अन्तिम अट्ठारहवें अध्याय को सुनने से भी पूरी गीता का सार समझ में आ जाता है।

हमारे शास्त्रों में, विशेषकर गणित में, नौ को पूर्णांक माना जाता है। अट्ठारह अंक भी अत्यन्त विशिष्ट है। अट्ठारह में एक और आठ जोड़कर नौ होते हैं अतः अट्ठारह को भी पूर्णांक माना जाता है। नौ का पहाड़ा विशेष है। इसकी सभी संख्याओं के गुणनफल का योग नौ ही आता है। इसीलिए एक सौ आठ (108), एक हजार आठ (1008) इत्यादि को पूर्णांक माना गया है। अंक नौ पूर्णता का प्रतीक है।

शंकराचार्य महाराज जी के नाम के आगे श्री श्री 108 या श्री श्री 1008 लिखा जाता है। भगवान वेदव्यास जी ने अट्ठारह पुराणों की रचना की है। महाभारत में अट्ठारह पर्व हैं। महाभारत का युद्ध भी अट्ठारह दिन हुआ था। गीताजी के भी अट्ठारह अध्याय हैं। नौ संख्या का हमारे यहाँ संख्यात्मक दृष्टि से बड़ा भारी महत्त्व है।

प्रश्न तीन तरह के होते हैंः-

1) वक्ता का ज्ञान जाँचने के लिए
2) अपना ज्ञान बढ़ाने के लिए
3) मुझे क्या करना चाहिए, यह जानने के लिए प्रश्न किया जाता है।

इस अध्याय का आरम्भ अर्जुन के प्रश्न से होता है। अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण का ज्ञान जाँचना अथवा अपना ज्ञान बढ़ाना नहीं चाहते हैं। अर्जुन के प्रश्न करने का प्रयोजन यह जानना है कि उसे क्या करना है।

अर्जुन कहते हैं कि **यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्।।5.1।।**

भगवान यह भी सुनिश्चित करें कि उसे क्या करना है, वे बताएँ जो उसके लिए उचित है और जिससे उसका सम्पूर्ण कल्याण हो। मुझे प्रेयस नहीं श्रेयस चाहिए अर्थात् जो मुझे प्रिय हो वह नहीं, अपितु जो मेरे लिए श्रेष्ठ हो वह ज्ञान दीजिए। भगवान ने जो बात तीसरे अध्याय के तीसरे और चौथे श्लोक के माध्यम से यही बात बताई है वही बात अट्ठारहवें अध्याय के आरम्भ में भी कही गई है। तीसरे अध्याय में भगवान ने निष्ठा की बात कही हैः

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।।3.3।।

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।।3.4।।

भगवान ने दो प्रकार की निष्ठा की बात कही। उन्होंने कहा कि सांख्ययोगियों की निष्ठा ज्ञान योग में तथा कर्मयोगियों की निष्ठा कर्मयोग में होती है।

लोग कहते हैं कि भगवान ने अर्जुन को ही गीता क्यों सुनाई। साधारण मनुष्य की ज्ञान शक्ति इतनी प्रबल नहीं होती है कि वह जो बात तीसरे अध्याय में सुनी हो उसी पर अट्ठारहवें अध्याय में जाकर प्रश्न कर सके।अर्जुन एक महान श्रोता हैं। श्रीभगवान ने जो बात गीताजी के आरम्भ में कहीं गई थी उन्हीं बातों को आधार बनाते हुए प्रश्न किया कि संन्यास और त्याग में क्या अंतर है?

यह बात आवश्यक नहीं कि जो घर-द्वार त्यागकर संन्यासी बन जाते हैं उन्हें भी संन्यास और त्याग का सही अन्तर ज्ञात हो। संन्यास और त्याग दोनों अलग-अलग हैं। जो भगवा धारण कर ले वही संन्यासी है, यह पूर्णतः सत्य नहीं है। कोई भगवा धारण करके भी भोगों में आसक्त हो सकता है, भोजन के प्रति विशेष रूचि रख सकता है, विलासिता का जीवन जीने की कामना कर सकता है। कोई गृहस्थ होकर भी त्यागी हो सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि किसी ने संन्यास ले लिया तो उसे त्याग आ गया और त्याग करना आ गया तो संन्यास लेना आवश्यक नहीं है।

गृहस्थ जीवन का निर्वहन करते हुए भी कई त्यागी संन्यासी पुरुष देखे गए हैं, जैसे - सेठजी जयदयालजी गोयन्दका, भाईजी श्री हनुमान प्रसादजी पोद्दार। ये भगवाधारी नहीं थे पर पूर्ण रुप से संन्यासी व महात्मा थे।

संन्यास और त्याग इसी बात से इस अध्याय का शुभारम्भ करते हुए अर्जुन श्रीभगवान से प्रश्न करते हैं

18.1

अर्जुन उवाच

सन्न्यासस्य महाबाहो, तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्।
त्यागस्य च हृषीकेश, पृथक्केशिनिषूदन॥18.1॥

अर्जुन बोले - हे महाबाहो ! हे हृषीकेश ! हे केशिनिषूदन ! (मैं) संन्यास और त्याग का तत्त्व अलग-अलग जानना चाहता हूँ।

विवेचन: प्रश्न पूछना या अपनी बात कहना भी एक कला है। अपने यहाँ भी विद्वान व्यक्तियों को प्रसन्न रखने की बात बताई जाती है।

श्रीभगवान ने भी चौथे अध्याय के चौतीसवें श्लोक में तत्त्वज्ञानी व्यक्तियों के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करने की विधि बताई कि, उन्हें प्रसन्न करो, प्रश्न पूछो, उनसे ज्ञान प्राप्त करो। भगवान कहते हैं कि पहले उन्हें प्रणिपातेन यानी प्रणाम करो, उनकी सेवा करो, प्रसन्न करो, फिर प्रश्न करो और उनसे ज्ञान प्राप्त करो।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।4.34।।

प्रसन्न करके ही विज्ञ पुरुषों से ज्ञान की प्राप्ति सम्भव है। सन्तों की सेवा करने के पश्चात् कभी हमारे मन में ऐसा भाव आ सकता है कि हम उन पर उपकार करते हैं। महाराज जी की जो व्यवस्था की, आवभगत की, वे याद रखेंगे कि इस बार मेरी श्रेष्ठ खातिरदारी की गई। उनकी सेवा की व्यवस्था हम अपने प्रसन्नता के लिए करते हैं। हम तो बहुत ही तुच्छ हैं, हम उनको क्या दे सकते हैं। हम तुच्छ प्राणी उन समर्थ महात्माओं के लिए क्या कर सकते हैं?

अर्जुन भगवान को हे महाबाहो, केशिनिषूदन और हृषीकेश तीन नामों से सम्बोधित करते हुए भगवान की शक्ति की प्रशंसा करते हैं।

केशिनिषूदन- भगवान ने केशि नामक राक्षस का वध किया था जो घोड़े का रूप रखकर भगवान के सामने आया। भगवान ने उस महा भयंकर अश्व का एक ही बार में पछाड़कर मर्दन कर दिया। इसलिए कृष्ण को केशिनिषूदन कहते हैं।

घोड़ा शक्ति का प्रतीक है। अश्व की शक्ति से मोटर की शक्ति को मापा जाता है। एक मोटर की क्षमता को हम हॉर्स पावर में नापते हैं। जब हम मोटर खरीदने जाते हैं तो हम पूछते हैं कि मोटर कितने हॉर्स पावर की है। जिनती अधिक हॉर्स पावर, उतनी अधिक मोटर की शक्ति।

महाबाहु-अर्थात् अत्यन्त बलशाली, बाहुबली, शक्तिशाली अश्व को भी मार डालने वाला।

हृषीकेश - हृषि + केश = इंद्रियों के स्वामी, मन को जीतने वाला कहा। भगवान के लिए यहाँ हृषीकेश का अर्थ अपने मन को नहीं अपितु सबके मन को जीतने वाले, अन्तर्यामी रूप के लिए कहा गया है।
सभी के मन की बात जानने वाला। कहा भी जाता है कि जिसने मन को जीत लिया, उसने जग को जीत लिया। जो अपने मन को जीत लेता है। वह सम्पूर्ण जगत को जीत लेता है। हृषीकेश का साधारण अर्थ घुंघराले बाल वाला भी होता है। पर यहाँ हृषिकेश का अर्थ अन्तर्यामी से लिया गया है।

अर्जुन ने भगवान को प्रसन्न करने के लिए तीन उपाधियों से विभूषित किया और कहा कि हे प्रभु मैं संन्यास तथा त्याग को पृथक-पृथक जानना चाहता हूँ। अर्जुन के द्वारा सुन्दर प्रश्न करने पर भगवान अत्यन्त प्रसन्न हो गए। फिर भगवान ने त्याग के चार सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

18.2

श्रीभगवानुवाच
काम्यानां(ङ्) कर्मणां(न्) न्यासं(म्), सन्न्यासं(ङ्) कवयो विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं(म्), प्राहुस्त्यागं(म्) विचक्षणाः॥18.2॥

श्रीभगवान् बोले - (कई) विद्वान् काम्य कर्मों के त्याग को संन्यास समझते हैं (और) (कई) विद्वान् सम्पूर्ण कर्मों के फल के त्याग को त्याग कहते हैं। कई विद्वान ऐसा कहते हैं कि कर्मों को दोष की तरह छोड़ देना चाहिये और कई विद्वान ऐसा (कहते हैं कि) यज्ञ, दान और तपरूप कर्मोंका त्याग नहीं करना चाहिये। (18.2-18.3)

विवेचन: भौतिक इच्छा पर आधारित कार्यों के त्याग को कुछ पण्डित जन संन्यास कहते हैं। कुछ पण्डित जन काम्य कर्मों के त्याग को संन्यास बतलाते हैं। काम्य कर्म का त्याग हम कर सकते हैं। विचारशील मनुष्य सभी कर्मों के फल को त्याग देते हैं।

जैसे बीज बोया है तो फल तो उगेगा ही, पर उगेगा या नहीं, इसकी आसक्ति का त्याग करूँगा। बीज बोने से पेड़ लगेगा, इसी आसक्ति का त्याग करना ही श्रेष्ठ है।

काम्य कर्मों के त्याग को करना आवश्यक है किन्तु यज्ञ, दान और तपरूप कर्मों को तो त्यागना नहीं चाहिए। कर्मों के फल के अर्थ को लोग अनर्थ में बदल देते हैं।

दो प्रकार के मूल कर्म होते हैं - विधि कर्म, निषिद्ध कर्म

विधि कर्मः करने योग्य कर्म,

निषिद्ध कर्मः नहीं करने योग्य कर्म चाहिए।

कर्म
।

। **।**
विधि कर्म **निषेध कर्म**
।
|-----------------------------------|
विहित कर्म **नियत कर्म**
(समष्टिगत) **(व्यष्टिगत)**
।
--
। **।** **।** **।** **।**
नित्य **नैमित्तिक** **काम्य** **प्रायश्चित** **आवश्यक**

हम यहाँ करने योग्य विधि कर्म की ही बात करते हैं। करने योग्य विधि कर्म दो प्रकार के होते हैं - विहित कर्म और नित्य कर्म समझते हैं।

विहित अर्थात् समष्टिगत बात है, सर्व कल्याण की बात है, ऐसा ही होना चाहिए।

मान लीजिए कि पूज्य स्वामी जी महाराज से नगर में कथा करवाना चाहते हैं तो सर्वप्रथम स्वामी जी से उनकी अनुमति ली

गई। अनुमति और तिथि मिल जाने पर, जो लोग कथा करवाना चाहते थे, उन्होंने धर्म के प्रति रुचि रखने वाले अनुभवी लोगों के साथ बैठक की। बैठक में इसकी चर्चा की गई कि अमुक दिन कथा का समय दिया गया है, इसके लिए क्या करना है? किस प्रकार करना है? कहाँ पर कथा करवाना उचित होगा? कितना बड़ा टेंट लगेगा? कितनी कुर्सियां लगेंगी? जमीन पर बैठने की क्या व्यवस्था करनी है? कथा के लिए मञ्च किस प्रकार का बनाना है? कथा का क्या नाम होगा? आयोजकों का क्या नाम है? इत्यादि सभी बातों पर विस्तार से चर्चा करके सब कुछ तय हो गया। यह विहित कर्म है, नियत कर्म नहीं है।

कुछ दिनों के बाद फिर बैठक की। पिछली बैठक में वे लोग थे जो कथा का संरक्षण करने वाले थे। इस बैठक में वे लोग बुलाए गए जिन्हें काम करना था जैसे - स्टेज बनाने वाला, स्वामी जी को लाने ले जाने वाला, उनके रहने की व्यवस्था करने वाले, पुष्प वर्षा की व्यवस्था करने वाले, इस प्रकार सभी लोगों को उनके अनुसार काम समझा दिया गया। दायित्व समझा दिया गया। यह हो गया नियत कर्म।

जब सारे कार्य बाँटे जा रहे थे, तो एक ब्राह्मण कुमार भी अपनी सेवा देने के उद्देश्य से आ गया। कहा कि मुझे भी कुछ सेवा दें। आयोजित समिति ने सोचा कि ब्राह्मण कुमार है, छोटा-मोटा काम तो नहीं दिया जा सकता। विचार-विमर्श करके उनसे कहा गया कि स्वामी जी जब चौराहे से आगे बढ़ते हैं तो शंखनाद तथा पुष्प वर्षा करनी है। ब्राह्मण कुमार ने कहा, उसे शंख बजाना नहीं आता। आयोजकों ने कहा कि स्वामी जी जैसे ही पहले चौराहे को पार करें, वहाँ खड़े होकर आपको इसकी सूचना देनी है ताकि शंखनाद शुरू कर दिया जाए। ब्राह्मण कुमार ने सोचा कि यह भी कोई काम है पर वह संकोचवश स्वीकार कर लिया। सभी ने सोचा उत्साहित होकर कार्य करने आया है तो काम अवश्य करेगा। यह सोचकर दूसरा व्यक्ति उस कार्य के लिए नियुक्त नहीं किया। संयोगवश मञ्च के पास उस ब्राह्मण कुमार के गुरु भी कथा सुनने पहुँचे तो वह गुरु सेवा में लग गया। वहाँ चौराहे तक पहुँच नहीं पाया। आयोजकों ने जो इतनी बड़ी व्यवस्था की थी, वह सब बिगड़ गई। शंखनाद हुआ ही नहीं।

कभी-कभी हमें अपने नियत कर्म का महत्त्व ज्ञात नहीं होता। अपने नियत कर्म पर आरूढ़ रहना इसलिए आवश्यक हो जाता है कि समष्टि में उस छोटे (व्यष्टि) नियत कर्म की एक बड़ी भूमिका हो सकती है। इसकी कल्पना मुश्किल है और इसलिए मेरे लिए जो नियत कर्म है, उसे मैं अवश्य करूँगा यह दृढ़ निश्चय होना चाहिए।

नियत कर्म पाँच प्रकार के होते हैं- नित्य, नैमित्तिक, काम्य, प्रायश्चित तथा आवश्यक।

1) नित्य कर्म -- अपना नित्य का नियम लिया।

जैसे तीन माला रोज जप करूँगा। गुरुमंत्र लेने के बाद शिष्य ने गुरु जी से पूछा कि गुरु जी कितनी माला रोज करूँ, ग्यारह कर लूँ क्या? गुरु जी ने कहा कि नहीं नियम तीन का ही लो, चाहे ग्यारह या इक्कीस बार जाप करो पर नियम ज्यादा नहीं लेना चाहिए।

नित्यकर्म समय साध्य होना चाहिए, बल साध्य होना चाहिए किन्तु धन साध्य नहीं होना चाहिए। जैसे - रोज मैं इतने धन का दान करूँगा।

ऐसा नित्य नियम लेना नहीं चाहिए जिससे किसी को असुविधा हो। कभी-कभी लोग ऐसे नियम ले लेते हैं कि मैं चार बजे उठकर शंख बजाऊँगा। इसे सभी को असुविधा होगी। ऐसा नियम किस बात का।

नित्य नियम आसान होने चाहिए। जैसे-- गाय को एक रोटी रोज डालेंगे, माता-पिता को प्रणाम करेंगे, रोज सुबह उठकर सरस्वती वन्दना के श्लोक का पाठ करेंगे। प्रतिदिन माता-पिता, गुरु को प्रणाम करेंगे। यह नित्य कर्म है। प्रातः काल सो कर उठते ही इस मन्त्र का पाठ करें

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती ।
करमूले तु गोविन्दः प्रभाते करदर्शनम् ॥

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले ।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्वमे ॥

2) नैमित्तिक कर्म -- जन्म-मृत्यु, विवाह, उत्सव पर्व इत्यादि पर जो कर्म किए जाते हैं, वे नैमित्तिक कर्म कहलाते हैं।

भगवान राम का वनवास जाना निश्चित हो गया। लक्ष्मण जी ने भगवान राम को मना लिया कि मैं आपके साथ चलूँगा। भगवान ने कहा कि माता की आज्ञा लेकर आओ। लक्ष्मण जी माता की आज्ञा लेने गए और हर्षित भाव से बोले।

हरषित ह्दयँ मातु पहिं आए। मनहुँ अंध फिरि लोचन पाए।
जाइ जननि पग नायउ माथा। मनु रघुनंदन जानकि साथा।।

लक्ष्मण जी ने अपनी माता को दण्डवत प्रणाम किया। प्रणाम तो माता को कर रहे थे और मन भगवान राम और माता जानकी की तरफ लगा हुआ था।

पूँछे मातु मलिन मन देखी। लखन कही सब कथा बिसेषी।।
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहु ओरा।।

माता के पूछने पर लक्ष्मण जी ने विस्तार से वनवास की बात बताई। तब माता सुमित्रा सहम कर ऐसे भागी गई जैसे छोटी सी हिरनी जंगल की आग में फँसकर सहम जाए। जैसे ही लक्ष्मण ने माता को सहमा हुआ देखा, वे भी विषाद में आ गए।

लखन लखेउ भा अनरथ आजू। एहिं सनेह बस करब अकाजू।।
मागत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ संग बिधि कहिहि कि नाहीं।।

डर के मारे लक्ष्मण जी विदा नहीं माँग पा रहे कि माता सुनकर ही सहम गई तो फिर मुझे विदा कैसे करेगी। अगर माँ ने अनुमति नहीं दी तो भगवान लेकर नहीं जाएँगे। लक्ष्मण जी बड़ी कठिनाई में आ गए!

समुझि सुमित्राँ राम सिय रूप सुसीलु सुभाउ।
नृप सनेहु लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ।।73।।

सुमित्रा जी ने अपना माथा धुना और कहा पापिनी कैकई ने पूरा वंश खराब कर दिया।

धीरजु धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी।।
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही।।
अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू।।

सुमित्रा जी ने धीरज रखकर कहा कि अब तुम्हारी माता जानकी और पिता राम जी हैं। जहाँ राम जी का निवास है, वहीं अयोध्या है, जहाँ सूर्य प्रकाश हो, वही दिन है। माता ने कहा जब राम जी, सीता जी यहाँ नहीं रहे तब तुम्हारा यहाँ क्या काम?

जौ पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहिं।।
गुर पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं।।
रामु प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही कै।।

गुरु, माता, पिता, भाई, देवता, स्वामी इन सबकी जी जान से सेवा करनी चाहिए। राम जी तुम्हे प्राणों से भी प्रिय हैं। तुम्हारे जीवन हैं। तुम्हें वन में कोई कष्ट नही होगा। उन्हें तुम्हारे होते कष्ट नहीं होना चाहिए। तुम्हारे साथ सीता जी और राम जी हैं। वही तुम्हारा सुख हैं। उनकी सेवा करना ताकि उन्हें कोई कष्ट ना हो।

पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें।।

अस जियँ जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू।।

लक्ष्मण जी को नैमित्तिक कर्म मिला, नैमित्तिक सेवा मिली। धन्य है माता सुमित्रा, लक्ष्मण जी चौदह साल तक वन में सोए नहीं। वीरासन में बैठकर रात भर पहरा देते। दिन भर राम जी की सेवा करते। उनके नित्य कर्म की, अग्निहोत्र की, कलेवे की, भोजन की सम्पूर्ण व्यवस्था करते पूरा समय भाई तथा भाभी की यथा साध्य सेवा करते कि, जंगली जानवर का उन्हें कोई भय ना हो।

3) काम्य कर्म-- इष्ट (इच्छित) की प्राप्ति, अनिष्ट की निवृत्ति के लिए जो कर्म किए जाते हैं, वे काम्य कर्म कहलाते हैं।

रामायण के अनुसार दशरथ जी ने पुत्र कामेष्टि यज्ञ किया। यह काम्य कर्म है। कुछ चाहिए इसलिए कर्म करना, काम्य कर्म है।

किसान फल की आशा में बीज बोता है। व्यापारी धन कमाने की आशा में माल खरीदता है। कर्मचारी वेतन की आशा में दिन भर काम करता है। कामना के अधीन जो कर्म हो, वह काम्य कर्म कहलाते हैं।

4) प्रायश्चित कर्म--

किसी भी गलती के लिए प्रायश्चित करना। आजकल इसका चलन बहुत कम हो गया है। पहले घर में चूहा-बिल्ली मर जाते थे तो उसके निमित्त दान किया जाता था।

किसी भी गलती का प्रायश्चित कर्म करने के कई उपाय हैं -

- मौन रहना,
- दान- अनुष्ठान करना
- पाठ करना
- जप करना,
- ध्यान करना
- भोजन का त्याग
- अपनी प्रिय वस्तु का त्याग, इत्यादि।

एक महापुरुष थे कि उनकी बात किसी को बुरी लग जाती तो एक घंटे का मौन रखते थे। किसी ने उनसे पूछा, पहले विचार तो करें कि आपकी गलती है भी अथवा नहीं। उन्होंने कहा, गलती से इसका सम्बन्ध नहीं है। मेरी वाणी से किसी को कष्ट पहुँचा इसका अर्थ है कि मुझे अपनी इस वाणी को साधने की आवश्यकता है।

स्वतन्त्रता आन्दोलन में विदेशी कपड़ों की होली जलाई गई। उस आंदोलन की गूँज इतनी जबरदस्त थी कि पूरे देश में लोगों ने अपने विदेशी वस्त्रों की होली जलाई। दो-चार दिन बाद गाँधी जी को पता चला कि जिनके पास केवल एक ही विदेशी वस्त्र था, वह भी किसी का दिया हुआ, उनको भी जला दिया। अब वे नंगे घूम रहे हैं तो गांधीजी को बहुत पश्चाताप हुआ। जीवन भर के लिए उन्होंने वस्त्रों का त्याग कर केवल आधी धोती में निर्वाह करने का प्रण किया। उन्होंने इस वाणी का इतना बड़ा प्रायश्चित जीवन भर किया। तिलक जी ने पूछा कि केवल आपके वस्त्र त्यागने से कितने लोगों को वस्त्र मिल जाएँगे। इस पर गांधी जी ने कहा कि कितने लोगों को मिलेंगे, यह तो नहीं मालूम पर जिनके पास नहीं है, उनका दुःख जरूर कम हो जाएगा। गांँधीजी गोल मेज कॉन्फ्रेंस के लिए ठिठुरती सर्दी में भी वही आधी धोती में लन्दन गए। लोगों ने बहुत कहा कि कोट पहन लें पर वे माने नहीं। पूरा जीवन आधी धोती में ही रहे। यह प्रायश्चित कर्म है। मेरे कारण अनिष्ट हुआ, बुरा हुआ। किसी के साथ गलत हो जाए उस पर यह प्रायश्चित कर्म किए जाते हैं। जैसे-- एक समय का भोजन छोड़कर, चुप रह कर, अपने आदत छोड़ कर, कुछ दिन के लिए मीठा छोड़ कर, जो भी प्रिय है, उसका कुछ समय के लिए त्याग कर प्रायश्चित कर्म किए जाते हैं।

अपने नियत कर्म को न करने पर भी प्रायश्चित कर्म किए जाते हैं। प्रायश्चित कर्म वैकल्पिक नहीं अनिवार्य हैं, नहीं मानने पर दोष लगता है।

5) आवश्यक कर्म -- जीवन यापन के लिए हम जो भी कर्म करते हैं, जीवन के लिए जैसे खाना, सोना, व्यापार करना, इत्यादि, सभी आवश्यक कर्म हैं।

एक राजा था। उसके राज्य की पूरी भूमि कहीं भी समतल नहीं थी, अत्यन्त विषम परिस्थिति थी। कहीं बड़े-बड़े पत्थर थे तो कहीं रेत थी। उसके राज्य में एक भी घर सुन्दर नहीं था क्योंकि असमतल जमीन पर घर ठीक से बन नहीं सकते थे। राजा परेशान हो गया। उसे पता चला कि पड़ोसी राज्य में एक गुणी राज मिस्त्री है। उसे प्रलोभन देकर बुलाया गया कहा कि मेरी प्रजा के लिए सुन्दर-सुन्दर घर बना दो। राजा ने पूछा कैसे बनाओगे तब उसने कहा कि पथरीली और रेतीली भूमि पर वह भूमि के अनुरुप ही घर बनाएगा। दो वर्ष में उसने सैकड़ों घर बनाए। राजा उसके काम से बड़े प्रसन्न हुए। वह वापस जाना चाहता था तो राजा ने कहा कि यहीं रहो पर उसने आनाकानी की। राजा ने कहा कि तुम जाना चाहते हो, वह तो ठीक है लेकिन जाने से पहले एक खूबसूरत सा घर बना कर जाओ, जिसके लिए तुम्हें जो भी चाहिए, वह मिलेगा। उसे अपने घर जाने की तीव्र इच्छा थी पर राजा की आज्ञा का सम्मान करते हुए उसने बड़े बेमन से एक घर बनाया। राजा ने कहा कि सरोवर के तट पर घर बना लो। उसने बेमन से पंद्रह दिन में घर बना दिया तो राजा ने कहा कि जाओ अपने परिवार के साथ वहाँ रहो, वह बहुत पछताया कि राजा ने तो खुला आदेश दिया था कि जैसा चाहो वैसा बनाओ। मैंने यह क्या कर दिया।

अपने नियत कर्म पूरी ईमानदारी से करना चाहिए। मेरा भाग्य मेरे लिए क्या कर रहा है, यह पता नहीं। इसके लिए नियत कर्मों की कभी अवहेलना नहीं करनी चाहिए। ऑफिस में हम बीस हज़ार रुपया वेतन पर काम करते हैं तो हमें वहाँ पच्चीस हजार तक के काम को करके देना चाहिए। माताएँ खाना बनाती है तो ऐसा बनाएँ कि मन खुश हो जाए। कुछ माताएँ ऐसी होती है जो खाना बनाती है, जिसे कम खाया जाए। जो भी काम करें, पूरी लगन व निष्ठा के साथ करें। ऐसा व्यक्ति जीवन में अपने आप में उत्तम बना रहता है

जो हर काम में खानापूर्ति करता है। वह अपने जीवन में फेल हो जाता है। उसके जीवन में संतुष्टि नहीं रहती। खुशी नहीं रहती।

कर्म की महिमा पर एक सुन्दर भजन का गान हुआ

भजन ः

कर्म तेरा साथी है ये ही साथ जाता है।
जो भी पहले बोया है वो ही आज पाता है।।

धोखा अगर तू देगा किसी को, बदले में तू भी धोखा ही पायेगा,
घर तू उजाड़ेगा जो किसी का भी बंदे, तेरा चमन फिर कैसे खिलेगा,
मालिक के पास सबका ही खाता है।।1।।

कर्मों के दुनिया में खेल हैं निराले, कर्मों के ही तो फल पाते सारे,
कर्मों के फल से बनते हैं राजा, कर्मों से बनते भिक्षुक बेचारे,
कर्मों के फल से ही सुख- दुःख आता है।।2।।

निर्बल को गर तू देगा सहारा, तुझको भी मिलेगा तभी तो किनारा,
प्यासे को तू जो पानी पिलायेगा, तुझको मिलेगी अमृत की धारा,
काहे को तू यह सच बिसराता है।।3।।

कर्मों से मानव कर्मों से दानव, कर्मों से ही तो बनते हैं देवता,
करने से पहले खुद सोचो विचारो, फिर ना मिलेगी गलती की माफी,
बार-बार तू क्यों गलती दोहराता है।।4।।

18.3

त्याज्यं(न्) दोषवदित्येके, कर्म प्राहुर्मनीषिणः।
यज्ञदानतपःकर्म, न त्याज्यमिति चापरे॥18.3॥

विवेचन: कुछ विद्वान ऐसा भी कहते हैं कि कर्मफल दोष युक्त होता है, इसलिए त्याज्य है। सभी कर्मों में दोष है। पर कुछ यह भी कहते हैं कि तप, दान तथा यज्ञ का त्याग नहीं कर सकते। यह तो करने ही पड़ेंगे।
अर्जुन ने कहा आपने काम्य कर्म (कर्मफल की आसक्ति) को तो संन्यास बता दिया तथा कर्म फल में दोष को त्याग बता दिया और दान यज्ञ तथा तप को नहीं त्यागना चाहिए, ऐसा आप दूसरों का सन्दर्भ देकर बता रहे हैं जबकि मैं तो आपसे आपके विचार जानना चाहता हूँ। तब श्रीभगवान ने कहा कि अर्जुन यह बातें केवल तुम्हारे लिए नहीं, उनके लिए भी है जो भविष्य में गीताजी का दर्शन करेंगे।

18.4

निश्चयं(म्) शृणु मे तत्र, त्यागे भरतसत्तम।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र, त्रिविधः(स्) सम्प्रकीर्तितः॥18.4॥

हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! (तू) संन्यास और त्याग - इन दोनों में से पहले त्याग के विषय में मेरा निश्चय सुन; क्योंकि हे पुरुषश्रेष्ठ ! त्याग तीन प्रकार का कहा गया है।

विवेचन:--श्री भगवान ने अर्जुन को दो उपाधियों से विभूषित करते हुए कहते हैं कि हे **पुरुषव्याघ्र (पुरुषों में व्याघ्र, वीर)** तथा **भरतसत्तम (भरत वंश के सभी लोगों का सत्त्व),** संन्यास तथा त्याग दोनों में से पहले त्याग के विषय में जान क्योंकि त्याग तीन प्रकार का होता है -

- सात्त्विक,
- राजस तथा
- तामस

18.5

यज्ञदानतपःकर्म, न त्याज्यं(ङ्) कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं(न्) तपश्चैव, पावनानि मनीषिणाम्॥18.5॥

यज्ञ, दान और तपरूप कर्मों का त्याग नहीं करना चाहिये, (प्रत्युत) उनको तो करना ही चाहिये (क्योंकि) यज्ञ, दान और तप - ये तीनों ही (कर्म) मनीषियों को पवित्र करनेवाले हैं।

विवेचन:--भगवान यहाँ कर्मयोगी बनकर बता रहे हैं, वे संन्यास के पक्ष में नहीं है क्योंकि उनके श्रीमुख से कही गई गीता का आधार कर्म है। श्रीभगवान कहते हैं कि यज्ञ, दान और तप बुद्धिमान पुरुषों को भी पवित्र कर देता है। यह अंतःकरण को पवित्र कर देता है इसलिए यह बुद्धिमान पुरुषों के भी करने योग्य है।

भगवान पहले करने योग्य कर्मों की बात करते है, उनकी बात नहीं करते जो करने योग्य कर्मों नहीं है। इसलिए भगवान यज्ञ, दान और तप को श्रेष्ठ कहते हैं।

यज्ञ का अर्थ है - (Sacrifice) बलिदान, त्याग

उदाहरण स्वरूप -
हम डॉक्टर को दिखाने के लिए लम्बे समय से लाइन में खड़े हैं और जैसे ही हमारा नम्बर आने वाला हो, तभी अधिक बीमार रोगी आ जाए और हम कहे कि आप पहले दिखा दीजिए तो यह यज्ञ हो गया।

कथा पण्डाल में जल्दी जाकर आगे बैठते हैं। एक बूढ़ी माई आती है और उसके लिए अपनी सीट यानी कुर्सी का त्याग कर देते हैं तो यह भी यज्ञ ही है। दो तरह के त्यागी होते हैं। पहले वे जो अपनी कुर्सी बूढ़ी माँ को देकर पण्डाल के बाहर जाकर लोगों को बताते हैं कि मैंने अपनी कुर्सी एक बूढ़ी माँ को स्वेच्छा से दे दी। जो कभी-कभी ऐसा करते हैं, वे अपने त्याग के विषय में बताते-फिरते हैं। जो त्याग कभी-कभार ही किया जाता है, उन्हें उसका अहङ्कार हो जाता है। किसी भी सद्‌गुण का अहङ्कार तभी होता है जब वह कभी-कभार ही किया जाता है।

जब सद्‌गुण नित्य जीवन में धारण किया जाता है, तो वह अहङ्कार रहित हो जाता है। वह उस धारक की वृत्ति बन जाता है, स्वभाव बन जाता है। उसका अहङ्कार नहीं होता है।

कुछ लोग कुर्सी पर बैठते ही इसलिए हैं कि कोई सुपात्र आए तो उसको अपनी कुर्सी देकर और मैं नीचे बैठा रहूँ। जो सदा ऐसा ही करते हैं वे बाहर आकर लोगों को बताते नहीं है क्योंकि ऐसा त्याग उनकी वृत्ति बन जाती है जबकि दूसरे इसको विशिष्टता मानते हैं। सद्‌गुणों को रोज धारण करने से उसका अहङ्कार नहीं रहता। जीवन में उसका प्रदर्शन नहीं होता। **थोथा चना बाजे घना** --जो भर गया वह कभी नहीं बजता।

घर में आम लाए, छोटे भाई का पुत्र सन्मुख आया तो उसे दो आम अधिक दे दिए, किसी को बताया नहीं। यह रोज की वृत्ति हो जाती है। छोटी-छोटी आदतों में, बातों में सद्‌गुणों की वृद्धि होनी चाहिए। हम दूसरों में सद्‌गुणों को ढूँढते फिरते हैं जबकि अपने आस-पास काम करने वाले लोगों के प्रति आप छोटे-छोटे त्याग की परिभाषा समझ जाएँगे तो आप सद्‌गुणी हो जाएँगे।

अपने साथ रहने वाले लोग, आस-पास और साथ-साथ काम करने वाले लोगों के प्रति आपका व्यवहार कैसा है, वह आपकी वृत्ति होती है।

घर में मिठाई आए तो पहले उनको दे जिनको पसन्द है। बाद में बचे तो लें, नहीं मिले या नहीं बचे तो कोई बात नहीं, पर इस बात की चर्चा किसी से ना करें तो यह यज्ञ हो जाएगा।

अपनी इच्छा का त्याग सद्‌वृत्ति है। सद्‌गुण सिर्फ बड़ी बातों से नहीं, अपने आचरण में छोटे-छोटे गुणों को जीवन में ग्रहण करते हैं तब वह सद्‌गुणों की बड़ी श्रृंखला बन जाती है और चरित्र महकता है।

तीरथ जप और दान करें, मन में करे गुमान।
नानक निष्फल जात है ज्यों कुँजर स्नान।।

गुरु नानक देव जी कहते हैं जो तीर्थ, जप और दान का अहङ्कार करता है, वह हाथी के स्नान के समान निष्फल हो जाते हैं। हाथी सरोवर के तट पर घंटों सूँड में पानी भर-भर कर नहाता है। पर जैसे ही वह बाहर आता है, सूँड में मिट्टी मिट्टी भर कर अपने ऊपर डाल लेता है। यह दृश्य देखकर सामान्य जन कहते हैं कि इसका स्नान तो बेकार हो गया। जबकि तथ्य यह है कि हाथी मिट्टी से स्नान कर अपने पर गिराए हुए पानी की ठण्डक और नमी को काफी देर तक रोकने का प्रयास करता है ताकि सूर्य की किरणें उसके शरीर को तुरन्त सुखा न दें। मिट्टी डालने का उद्देश्य कुछ होता है पर देखने वाले को कुछ और ही दिखाई देता है।

इसी प्रकार अपने तीर्थ तथा दान की चर्चा करने से वे वैसे ही निष्फल हो जाते हैं जैसे हाथी का स्नान। पर जिसकी वृत्ति सद्‌गुणी हो जाती है, उसके विचार भी अलग ही हो जाते हैं। उसे कुछ कर्म न कर पाने से क्लेश होता है कि वह अमुक कर्म नहीं कर पाया। भगवान यहाँ अपनी बात जोड़ते हुए आगे कहते हैं, पर अर्जुन की किसी की बात का खण्डन नहीं करते।

18.6

एतान्यपि तु कर्माणि, सङ्गं (न्) त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ, निश्चितं (म्) मतमुत्तमम्॥18.6॥

हे पार्थ ! इन (यज्ञ, दान और तपरूप) कर्मों को तथा (दूसरे) भी (कर्मों को) आसक्ति और फलों की इच्छा का त्याग करके करना चाहिये - यह मेरा निश्चित किया हुआ उत्तम मत है।

विवेचन:- श्रीभगवान कहते हैं कि यह मेरा उत्तम निश्चित मत है कि कर्म के फल को छोड़ो, अन्यथा कर्म में आसक्ति हो जाती है और आसक्ति का त्याग करो।

सेठ जी जयदयाल जी गोयन्दका से किसी ने पूछा कि जब सत्संगी लोग आपकी प्रशंसा करते हैं, आपकी ओजस्वी वाणी की प्रशंसा करते हैं, तो क्या आपको अहङ्कार नहीं आता। वे बोले कि अहङ्कार तो नहीं आता अपितु लगता है कि सामने वाला उदार प्रवृत्ति का है। मेरी कैसी भी बात को सुनकर वह बोलता है कि आज आप बहुत अच्छा बोले हो। यह सद्गुण की पराकाष्ठा है।

निश्चितम् उत्तमम मम। यह निश्चित उत्तम बन जाता है।

भगवान अर्जुन को तीन प्रकार के यज्ञ दान तथा तप के बारे में बताते हैं। इस पर आगे चर्चा करेंगे।

हरि शरणम् हरि शरणम् के मन्त्र जाप के साथ सत्र का समापन हुआ। उसके पश्चात् साधकों की जिज्ञासा का समाधान किया।

प्रश्नोत्तरी:-

प्रश्न कर्ता: शशांक किरवईजी

प्रश्न :--हनुमान चालीसा में लक्ष्मण जी के सामने हनुमान जी से भगवान क्यों कहते हैं कि, **तुम मम प्रिय भरतहिं सम भाई।।** यहाँ भरतजी का ही उदाहरण क्यों लिया गया?

उत्तरः भरत जी अध्यात्म की पराकाष्ठा हैं। भरत जी के प्रेम की उत्कृष्टता सभी सीमाओं को लाँघ देती है। लक्ष्मण जी का प्रेम भी अनमोल है। अयोध्या आने पर लक्ष्मण जी किसी बात पर असंतुष्ट होने पर बात मुँह पर स्पष्ट रूप से कह देते थे। पर भरत जी मन में भी संकोच करते हैं कि बात भगवान को बुरी न लग जाए। यह बात अच्छी नहीं लगेगी। भरत जी का भगवान के प्रति अद्भुत भाव है। चित्रकूट में जब भरत जी चतुरङ्गिनी सेना लेकर मिलने पहुँचे तो लक्ष्मण जी को सन्देह हुआ। उन्होंने भगवान से कहा कि आप चिन्ता मत करो। मैं अकेले पूरी सेना का विनाश कर सकता हूँ। भगवान ने कहा कि शान्त हो जाओ। तुम भरत पर व्यर्थ ही सन्देह कर रहे हो। लक्ष्मण जी ने कहा कि यदि भरत को मिलना ही था तो अकेले आता, हमें मारने के लिए चतुरङ्गिनी सेना लेकर आया है ताकि हमें मार कर काँटा ही दूर कर दे। भगवान राम ने कहा कि पृथ्वी पूरी तरह जलमग्न हो सकती है, सूर्य प्रकाश देना बन्द कर सकता है, पर भरत के मन में इस प्रकार का भाव उत्पन्न नहीं हो सकता। चित्रकूट आने पर सभी भरतजी से कहते हैं कि आप राम से अयोध्या वापिस चलने के लिए कहें। भरतजी ने कहा कि क्या उन्हें पता नहीं राम से कैसे कहूँ, मैं उनको संकोच में डाल दूँ, मैं इतना दुष्ट नहीं हूँ। यह दुःख भी उन्हें मेरे ही कारण हुआ है। मैं कुछ और कह कर उनको संकोच में नहीं डाल सकता। यह ठीक नहीं, क्योंकि मेरी बात वह काटेंगे नहीं, मानकर उनको अपने मन की बात टालनी पड़े तो मुझे मुझसे बड़ा पापी इस संसार में कौन हो सकता है।

वशिष्ठ जी भी भरत से कहते हैं, आपकी बात प्रभु टालेंगे नहीं। फिर भी भरत जी ने नहीं कहा, क्योंकि वह उन्हें संकोच में नहीं डालना चाहते थे। पूरे प्रसङ्ग में भरत जी ने एक बार भी भगवान को वापिस लौट चलने के लिए नहीं कहा। वे नन्दीग्राम में गड्ढा खोदकर चौदह वर्ष रहे, उच्छिष्ट वृत्ति का भोजन किया। भरत प्रेम अनुपम है।

प्रश्न कर्ता-- बजरंग भैया

प्रश्नः देह में रहते हुए देह से मुक्ति कैसे मिले?

उत्तरः- देह से मुक्ति नहीं, अभिमान से, देहाभिमान से मुक्ति चाहिए। यह शरीर विशेष है। अपने गुणों का अहङ्कार, अपने पैसे का अहङ्कार, अपने शक्ति का, सम्बन्धों का अहङ्कार, बल का अहङ्कार, इन सबका त्याग करें। स्मरण रहे कि यह शरीर नश्वर है। इनके सारे पाले हुए सम्बन्ध भी नश्वर है। यह ज्ञान जैसे-जैसे होता जाता है, देहाभिमान कम होता जाता है। हम अपने आप को ज्ञानी मान लेते हैं और बुद्धि का अहङ्कार लेकर बैठे रहते हैं।

।। ऊँ कृष्णार्पणमस्तु।।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||